कुतरवा

राजा भैयाऽऽऽ

https://www.hindiadda.com/kutarawa/

एक बेहद लाचार और आत्मीय चीख के साथ परसाराम का रुदन फूट पड़ा।

बँगले की भीगी और निश्चल पड़ी उदासी सकते में आ गई। परसी (परसा की पत्नी) झपाटे से मालकिन के कमरे की तरफ दौड़ पड़ी। दरवाजे पर दस्तक देने के लिए बेताब हथेली सँभलकर आगे बढ़ रही थी कि मोखे से आती रोशनी ने ऐन वक्त पर रोक दिया। 'दीदी' की टेर लगाने की भी जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि तब तक भरपूर काया की कमलादेवी ने दरवाजा खोलकर ऊँघते हुए दरयाफ्त फेंक छोड़ी थी '...का हुआ रे परसी जो इतनी रात को...'

सर झुकाए कातर खड़ी परसी को जवाब देने की जरूरत ही नहीं पड़ी क्योंकि तब तक परसा का रुदन हिलोरें मारने लगा था।

राजा भैयाऽ! राजा भैयाऽऽ!! राजा भैयाऽऽऽ!!!

भीतर कमरे में आँखें मलते अमर प्रताप सिंह ने सामने दीवार की तरफ देखा। थोड़ी निगाह गढ़ाते ही बमक पड़े : रात के डेढ़ बजे इ सब की का जरूरत है, इ तो होना ही था।

मगर उठना पड़ा।

रुस्तम की बात थी।

रुस्तम यानी राजा भैया की।

वे नाइट सूट पहने बाहर आए और टटोलती-सी निगाह से गार्डन के झूले तक जा पहुँचे जहाँ उद्विग्न-सी दिखती कमलादेवी छोटे-छोटे झोटे खाए जा रही थी। ठाकुर साहब को देखकर साथ में गायत्री मंत्र-सा कुछ बुदबुदाने लगीं। ठाकुर साब ने साथ चलने का इशारा किया तो हाथ पटकती हुई बोलीं, 'आप चले जाइए... हमसे नहीं देखे करेगा।'

'अरे तो हमें ही कौन अच्छा लग रहा है। केतना साथ निभाया। मगर पिछले दिनों से हालत देख रही थीं... अच्छा हुआ जो मुक्ति मिल गई...'

अमर प्रताप सिंह खुद परेशान थे मगर कमलादेवी की नाजुक मनोदशा से वाकिफ थे इसलिए आवाज और चाल में अतिरिक्त मर्दाना रंग घोले दे रहे थे। बड़ा हिला हुआ था रुस्तम उनसे। उधर कमला देवी, यह जानते हुए भी कि रुस्तम आज-कल का ही मेहमान है, अभी-अभी दरपेश हकीकत को पचा नहीं पा रही थीं इसलिए झूलते हुए ही

दूसरी तरफ चेहरा कर लिया। काश, आज अभि (अभिमन्यु सिंह, पुत्र) और परी (प्रज्ञा, पुत्री) में से कोई यहाँ होता। होता कुछ नहीं मगर फिर भी...।

तब तक मेवाराम माली, कभी-कभार गाड़ी चला लेनेवाला मेवाराम का बेटा परबत, दूसरा बँगला पियोन गेंदालाल और उसकी पत्नी सुरसती भी लॉन में आ चुके थे। गार्ड घनश्याम और रघुनाथ तो थे ही।

कमला देवी को पूर्ववत झोटे खाते देख अमर प्रताप सिंह बोले, 'कोई पिछले जनम का अहवाल होगा जो भेष बदलकर हमारे यहाँ रहता रहा... हमारा इतना कुछ भला करने को... ऐसे बखत में तो... क्यों कमली...' घर में रह रहे इतने जनों के रेले के बीच डी.एम. साहब की इतनी मनुहार का कमलादेवी पर बराबर असर हुआ और वह लॉन के दूसरे छोर पर बने परसाराम के ठिकाने की तरफ उनके साथ हो लीं।

साहिब और कमलादेवी को देख किसी सचमुच के मरीज की तरह परसा अपना आपा खो बैठा : 'हम का गलती किए जो ऐसे संत-सुभाव जीव को भगमान हमसे छीन लिए... मानुख देह ही नहीं धरी नाहीं तो कउन मानुख से कम रहे... टैम से जीमना, टैम से सोना... एक-एक बात समझत रहीं... एको चीज का लालच नहीं... राजा भैया के बिना हम का करहिं साहब...' कमलादेवी के तलवों में अपना माथा गड़ाए परसाराम का स्वर हिचकोले खा रहा था। बात भी सच थी।

पिछले छह बरसों से, यानी जब से रुस्तम को अमर प्रताप सिंह ने अपनी निगहबानी में लिया - या कहें कि जब से उन्होंने खुद को रुस्तम की छत्रछाया के सुपुर्द किया - परसाराम ही उसका सारा ताम-झाम सँभालता था। मसलन सुबह उठकर सबसे पहले उसे टहलाना, फिर नाश्ता, फिर आराम, दुपहरिया का खाना, शाम को दूध-टोस्ट और रात को मुर्गे वाला खाना। अलावा इसके हफ्ते में दो बार गुनगुने पानी से स्नान और एक दफा वैट (पशु चिकित्सक) के पास मुआइना कराने ले जाना होता।

अमर प्रताप सिंह की गाड़ी जैसे ही पोर्च में आकर लगती, रुस्तम हर तरफ से छलाँग मारता उनके पास आ धमकता और पिछली टाँगों के बल खड़े होकर किसी हमदर्द-सा उनके सीने से लिपट जाता। चंद ठहरे हुए पलों के उस आगोश में वे उसके माथे और गर्दन को लंबे-लंबे स्पर्शों से सहलाते, पीठ थपथपाते और आखीर में ममत्व से लबालब होकर हवा में डपटते, 'चलिए चलिए, बहुत हो गया। अब डाउन। डाउन रुस्तम'। और वाकई, किसी लायक शागिर्द की तरह, अपनापे के अहसास से उत्साहित होकर रुस्तम नीचे उतर आता और उनके पीछे-पीछे ड्राइंग-रूम-जहाँ अमर प्रताप

सिंह कुछ देर चाय आदि के लिए पसरते थे - में आकर उनके बाजू में बैठ जाता। यह रोजाना का क्रम था जो पिछले बीसेक दिन से भंग हो गया था।

चार महीने पहले रुस्तम ने बारह बरस पूरे किए थे। इस मौके पर वैट डॉक्टर रणसिंह ने जानकारी दी थी कि रुस्तम की नस्ल दस-बारह साल की उम्र पाती है, अतः बहुत मुमकिन है कि यह इसका आखिरी जन्मदिन हो। इससे विचलित होकर अमर प्रताप सिंह ने पंडित राधारमण त्रिपाठी के हाथों संकटमोचन का पाठ भी करवाया था। इससे पहले उसकी दोनों आँखों की रोशनी चली गई हालाँकि इससे खास फर्क नहीं पड़ता था क्योंकि रुस्तम को घर के चप्पे-चप्पे का अंदाजा था। वह सूँघते-भटकते वहीं आकर बैठ जाता जहाँ घर का कोई सदस्य बैठा होता। स्थिति तब बिगड़ी जब, महीने भर पूर्व सीढ़ियों से लुढ़कने के बाद उसके कूल्हे की हड्डी टूट गई। डॉ. रणसिंह को दिखाया तो उन्होंने बतलाया कि अस्थि-मज्जा चुक जाने से अब कुछ नहीं हो सकेगा। पाँच-सात रोज तो रुस्तम खींच-खाँचकर अपना काम चलाता रहा मगर उसके बाद वह एकदम धसक गया। जहाँ हड्डी टूटी थी उसके ऊपर त्वचा में एक घाव भी आ बैठा था। रणसिंह उसकी खूब ड्रेसिंग करते। तीन-चार रोज में जब उसके तमाम झबराले बाल झड़ गए तब परसा को पता चला कि उसकी काया को कितने सूराखों ने बींध दिया है। पहले उसका वजन 43 किलो जा पहुँचा था मगर दो हफ्ते की अनसन मिश्रित बेचारगी, अंदरूनी तकलीफ, उदासी और मरियलपने के कारण अब वह अठारह किलो पर आ गया था। और ढलान का यह क्रम जारी था। अमर प्रताप सिंह गाहे-बगाहे उससे आत्मीय संवाद बनाने की कोशिश करते तो वह बड़ी निरीहता से उन्हें टुकुरता। उसकी उखड़ती-गंधाती त्वचा कुछ किए जाने में बाधक थी। भला हो परसाराम का जिसे कुछ घिनाता नहीं था। पंद्रह-बीस दिन से तो वह अपनी कुठरिया से ही नहीं निकला था। मेवाराम और परबत का जरूर कुछ सहारा था।

मगर आज, यानी अभी तो सब कुछ शून्य हो गया। अकेले में पाँच-सात दहाड़ें मारने के बीच परसा के भीतर कुछ दृश्य बेतरतीब भटकते आ गए। उसे वह दिन याद आया जब पहली बार उसे रुस्तम की सेवा के लिए नामजद किया गया था। तब साहब किसी बँगले-शँगले में नहीं एक छोटे-से मकान में रहते थे। खुद अपनी मारुति चलाकर सचिवालय जाते थे। आज जैसे तीन-तीन तो क्या, उसमें एक भी सर्वेंट क्वार्टर नहीं था। कमलादेवी के पिता ठेकेदार थे जो खूब बड़े रहे होंगे क्योंकि उनके यहाँ बड़े फोन आते-जाते थे। परसा का जनम उनकी उसी कोठी में हुआ था जिसकी रसोई सँभालते उसके पिता मनसाराम ने उम्र निकाल दी थी। परसाराम को कमलादेवी के पिता ने दहेज के दूसरे सामान के साथ दिया था। बड़े दिनों तक वह उनकी रसोई तथा बाकी

काम सँभालता रहा। उसकी पत्नी - आज की परसी (असल नाम किरणदेई) गाँव में ही उसके संयुक्त परिवार में खटती थी। अभि-परी के बाद उसे बुला लिया गया था।

परसा को आज तक समझ नहीं आया कि ऐसे जबरे, उल्टे तवे को उस छोटे-से मकान में रखकर पालने की क्या जरूरत थी। कितनी तो मोटी उसकी गर्दन और कितने चौड़े नथूड़े। सोटे-सी लटकती पूँछ और स्याह झलकती बादामी आँखें। पूरी काया पर लंबे-लंबे बालों की झंखाड़। जब आया था तो उसकी उम्र छह साल बतायी गई थी। अब बताइए, कहाँ आदमी का ठिकाना नहीं और यहाँ कुत्ते का भी जन्मदिन होता है। और खाता भी चार जनों की तरह भकोसकर है। खैर, परसा को इससे क्या। वह तो एक तरह से खुश ही था कि एक कुत्ते की चाकरी के सहारे उसने अपने घर-परिवार के पाँच-सात छोटे-बड़ों का अमर प्रताप सिंह की मेहरबानी हिल्ला हिसाब बैठा दिया था वरना भूमिहरों-ठाकुरों की ऐंठ-पेंठ के बीच उसके जैसे पराश्रित महतो फटीचर की बेहाली का कोई ठिकाना था? सचिवालय के बाद साहब के जिले में आने के बाद सुख-सहूलियतों का पानी उस जैसों तक भी रिस आता था। बँगले की रसोई के लिए परसी (यह नाम कमला दीदी ने दिया था) के अलावा दो जन और थे। मेवाराम माली और उसका बेटा परबत तो थे ही उसके खानदानी। नौ पास एक भाँजे को साहब ने बी.डी.ओ. दफ्तर में पक्का करा दिया था। आनेवाले दिनों में भी, भगवान की कृपा से, फिकिर जैसी कोई बात नहीं होनेवाली थी। फकत एकठो कुत्ते की देखभाल रखना, खाना और पगार, और कहीं मिलती? एक बात मगर परसाराम को शुरू से ही सालती आई थी : रुस्तम उसे अक्सर काट खाता था। एक बार तो पट्ठे ने सिर तक चढ़कर उसे ऐसा झिंझोड़ा था कि परसा की रूह काँप गई थी। गाँव के कुत्तों ने दसियों दफा परसा की त्वचा का स्वाद चखा था मगर यह वाकया अलग था। कमला दीदी और अभि भैया उसे समझाते न थकते कि लेब्राडोर काटता नहीं, सूँघता-चाटता है... तू डर गया होगा... कुछ छेड़छाड़ की होगी...। बड़ी देर ठिठौली के बाद अभि भैया ने समझाया कि कोई बात नहीं, काट भी लिया तो कुछ नहीं होगा... इसे वैक्सीन लगा है।

'मतलब?'

'अरे मतलब ये कि... अरे यार तू यह समझ ले कि तुझे कुछ नहीं होगा।' समझाने चले अभि भैया झल्लाने लगे।

'इ कइसै।'

परसा मासूमियत से इस करिश्मे की तह तलाशने लगा।

'ई अइसन कि... तू छोड़ यार, तेरी समझ में नहीं आएगा...' अभि भैया ने उसी की जुबान पकड़कर बात टाल दी तो परसा मुरझा गया। वह जाने लगा तो क्या सोचकर अभि भैया ने उसे पुकारा। ठिठुरता-सा जब वह पास आकर खड़ा हो गया तो वे बोले, 'इसे तू किस नाम से बुलाता है?'

'ओही जिसे आप सहाब लोग बुलात रहीं।'

'ओही क्या?' अभि भैया उगलवाने पर उतारू थे।

'रसतभ' संकोच से घिरा परसा बुदबुदाया।

पता नहीं क्या हुआ कि अभि भैया हँस पड़े। कोई पक्का सुराग हाथ लग जाने के यकीन से बोले, 'इसमें बेचारे रुस्तम की क्या गलती है... तू उसका नाम ही गलत लेता है... रसतभ नहीं रुस्तम है रुस्तम... तुझे कोई परसा से फरसा बुलाए तो!' अभि भैया किसी माट्साहब की तरह समझाइश करने लगे।

अपनी बुनियादी नाकाबिलियत पर परसा सर झुकाए खड़ा रहा। क्या कहे? क्या बताए कि युगों पहले उसके 'पुरुषोत्तम' पर न जाने किस महात्मा ने फरसा चला दिया था तभी तो आज तक हर छोटे-बड़े की जुबान पर परसा-परसा होकर रह गया है।

'हमसे उ नहिं बोला जात है साहब।'

किसी तरह साँस खींचकर परसा ने सफाई दी। फिर अचानक चहककर कुछ भूल सुधार करते बोला, 'एक बात कहें बाबू।'

'क्या?'

'हम उसे राजा भैया कह देवें।'

परसा मानो प्रायश्चित में सब कुछ करना चाहता हो। परसा की बात पर अभि भैया खिलखिला पड़े। फिर कुछ पल बाद किसी तरह अपने को थामते हुए बोले, 'अबे, उसे कोई शायर समझ रखा है क्या... चल ठीक है राजा भी... मैं ट्रेनर से बात करूँगा।'

और वाकई ट्रेनर ने इस बाबत खूब काम किया। रुस्तम अब परसा के राजा भैया की गुहार पर खूब कान देता था।

'कान' तो देता था मगर परसा के प्रति उसके बर्ताव में कोई रियायत नहीं थी। उस दिन परी दीदी ड्राइंग-रूम के सोफे पर बिठाकर जब उसे सहला रही थीं और परसा वहाँ उनका नाश्ता रखने आया था तो राजा भैया अजनबियों की तरह भड़क उठे थे। कुछ पल तो किसी को समझ न पड़े कि क्या हुआ है। और तब, परी दीदी ने बड़ी बेदारी से सारे माजरे की नब्ज पकड़ ली थी : यानी परसा की खिचड़ीनुमा दाढ़ी जिसे देखकर खुद उनका जी मिचलाने लगा था।

चलो अच्छा हुआ, बीमारी तो पकड़ में आई। 'मगर इ तो जिनावर हैं, इ का समझत रहिं।'

जैसा होता था, परसा ने आदतन मासूमियत से अपनी उलझन पेश कर दी।

'ये न जानवर है और न कोई कुत्ता। समझे। ये लेब्राडोर है परसा, लेब्राडोर... बहुत अक्लमंद दोस्त है इनसान का...'

'पर उ के तो खुदे कितने बाल हैं।' परसा ने रुस्तम की झबराली काया को ही ढाल बनाया - आखिर जीवन के पिछले बत्तीस बरसों की सहूलियत दाँव पर थी। गाँव में पिता की मृत्यु के बाद बाल उतरवाने को छोड़ परसा को याद नहीं कभी उसने दाढ़ी छीली हो। हाँ, महीने दो महीने में उसकी थोड़ी कतरब्योंत हो जाती थी। परी दीदी का नुस्खा बड़ा अजीबोगरीब और नागवार था।

मगर राजा भैया की पारिवारिक हैसियत के आगे कोई चारा नहीं था... सिवाय इसके कि वह इसे अपनी खुशी मानकर मुड़वा दे। और उसने किया भी ठीक वही।

दाढ़ीविहीन सपाट चेहरे की परसाराम की 'नई लुक' को अभि भैया और परी दीदी ने 'स्मार्ट' और 'क्यूट' कहकर सराहा था। मेवाराम और परबत अनमने में थे जबकि परसी को कुछ 'सूझे' नहीं रहा था। अच्छी बात यह थी कि उस ऊबड़-खाबड़ से चेहरे को मनमाने ढंग से खुलेआम चाटकर राजा भैया ने अपनी खुशी जाहिर कर दी थी। मतलब, साहब समेत घर के सभी मनोविश्लेषकों की यही राय थी। परी दीदी ने यह भी दर्ज किया कि परसा के 'कायांतरण' के बाद रुस्तम ज्यादा मस्त और स्वस्थ रहने लगा है - यदि खुराक और 'बावल' की गवाही मानी जाए तो!

सब तरफ मानो बसंत की बहार आ धमकी थी। साहब की जिले में तैनाती हो गई। खूब बड़ा बँगला मिल गया। अभि भैया और परी दीदी अच्छी जगहों पर पढ़ने निकल गए। घर-बाहर का काम तो उतना कम नहीं हुआ मगर परसा पर राजा की निर्भरता के

चलते उसकी हैसियत में छटाँक-दो छटाँक इजाफा तो हुआ ही था। बिना किसी दूसरी वजह के, वह क्यों झूठ बोले, पगार बढ़ गई थी। परसा को कुछ अटपटा लगता तो बस यही कि घोर जूड़ी बुखार के कारण जब वह 'जय हिंद' होने की कगार पर झूल रहा होता तब भी राजा भैया का दाना-पानी उसे ही सँभालना होता क्योंकि सब लोग कहते थे कि रुस्तम को परसा के हाथ की लत लग गई है।

'जय हिंद' से परसा की राजा भैया के जय हिंद हो जाने का फिर करंट लगा और वह फिर से बुक्का मारकर फूट पड़ा।

सामने खड़े इतने सारे लोगों की जान में जान आई क्योंकि रुदन को अधर में छोड़ वह किसी दूसरी दुनिया की सैर को निकल भागा था। 'परसा परसा' की चुटकी झिंझोड़ें नाकाम हो रही थीं। यूँ समझो कि मुँह पर पानी के छींटे मारे जाने की तैयारी थी... कि कहीं सदमे से... बहुत अटैच्ड था... कहता भी तो था, 'पहिले के जनम में राजा भैया जरूल कोई संत-महात्मा या सेठ-साहूकार रहिबे करीं...'। खुद के आस-औलाद नहीं थी इसीलिए रुस्तम को बच्चे की तरह दुलारता था...।

शुक्र है, दूसरी मुसीबत से तो बच गए।

निस्तेज, मृत पड़े रुस्तम के सामने परसा की हालत देखकर अमर प्रताप सिंह ने मेवाराम और परबत को इशारा किया कि उसे फौरन दूसरी कोठरी में शिफ्ट कर दिया जाए।

'जो हो गया सो हो गया' रात के तीसरे पहर बँगले में कुदाल करती गहमागहमी पर रोक लगाते हुए डी.एम. साहब ने आह्‌वान किया।

'हम राजा भैया को छोड़ि कहीं नहीं जावेंगे साहिब।' आदेश के अनुपालन की प्रक्रिया में परसा ने बिफरते हुए विसम्मत कराह मारी मगर उसके कानों पर जब साहिब के 'परसा' का कड़क प्रहार गूँजा तो स्थिति सँभली और वह आँसू पोंछता मुड़-मुड़कर देखता हुआ दृश्य से ओझल हो गया। थोड़ी देर में एक कोरी शफ्फाफ चादर से रुस्तम को दुबका दिया गया।

सुबह तक की पहरेदारी परबत और गेंदालाल ने सँभाल ली। बाकी लोग विसर्जित होनेवाले ही थे कि तेज चाल के कारण हाँफते हुए मेवाराम ने बताया कि परसा कह रहा है कि राजा भैया के ऊपर असली घी का लेप करा दें और तनी गंगाजल छिड़कवा दें नहीं तो सुबह तक...।

वो बेजुबान तो चला गया पर तेरी जिंदगी कैसे कटेगी रे परसा। सँभाल अपने को पगले!

पूर्व जन्म में रुस्तम के संत-महात्मा होनेवाली बात पर अमर प्रताप सिंह और कमलादेवी काफी पहले ही यकीन करने लगे थे।

प्रोन्नति से प्रांतीय सेवा में शामिल हुए अमर प्रताप सिंह को चार-पाँच बरस हो रहे थे। अभी तक डिस्ट्रिक्ट पोस्टिंग तो छोड़िए, सचिवालय के भीतर, सड़क या भवन-निर्माण की सीट तक के लाले पड़ रहे थे। ऑडिट, हाउसिंग या फिर प्लानिंग जैसी सूखी कुर्सियाँ तोड़ने के लिए ही प्रोन्नति मिली थी क्या? विधायक रामेश्वर सिंह से भी जोर लगवा लिया था मगर जिले में किए जानेवाले तबादलों की सूची से हर बार उनका नाम कट जाता। मुख्यमंत्री या सीधे दिल्ली से सही पैरवी की दरकार थी मगर कोई हिसाब ही नहीं बैठ पा रहा था। बड़े बुरे दिन थे वे। सचिवालय के कई चपरासी तक दया भाव मानने लगे थे। और उनका भी क्या कसूर जब ठेकेदार ससुर साब के ख्यालात से प्रेरित होकर पत्नी तक, मौका-बेमौका, उन्हें नाकारा का तमगा पहना जाती थी (आज तो कितना कुछ बदल गया है)। जूनियर्स तक डिस्ट्रिक्ट में जा रहे थे। खुला रेट पकड़ने की हैसियत नहीं थी। फिर कोई बिचौलिया गारंटी देने को तैयार नहीं। कोढ़ में खाज तब हुई जब उनके विभाग के तीन मातहतों के फर्जी मेडिकल बिलों का मामला उजागर हो गया। सभी पर उनकी मंजूरी थी। वे तीनों तो खैर निलंबित हो गए (ढाई साल बाद बहाल भी) मगर उस कांड में खुद का शामिल न होना सुनिश्चित करने में वे दो के पेटे (पेटियाँ) में आ गए थे। निलंबन से तो बचे मगर तय था कि अगले दो-तीन साल के लिए भी सूखे रहेंगे। वे किसी गाँव-देहात में तो रहते नहीं थे कि साल भर के नाज-पानी का इंतजाम हुआ नहीं कि गंगा नहा लिए। राज्य की राजधानी में थे जहाँ घर-बाहर के जरूरी हो आए खर्चों की रोज के हिसाब से फैलती दुनिया थी। अपना शिकंजा मजबूत रखने के लिए तंत्र द्वारा बनाए बेशुमार अथाह गड्ढों के दुश्चक्र में हमेशा-हमेशा के लिए फँसे रहने का खतरा बहुत हौलनाक ढंग से उन्हें अपनी गिरफ्त में ले चुका था (उस समय की अपनी मानसिकता को याद कर आज भले हँसी आती हो)। सचिवालय का कारावास खत्म ही नहीं हो पा रहा था। उनके मन में कई बार आया कि एक बार-बस एक बार कायदे की कोई डिस्ट्रिक्ट मिल जाए! साल-दो साल में ही वे ऐसा पुख्ता इंतजाम कर लेंगे कि फिर हर महीने घर बैठे आती पेंशन से काम चल जाए। मगर 'डिस्टिक' मिले तब ना। बंद होते रास्तों में भटकते हुए तब अपने मातहत लिपिक नरेंद्र बहादुर (उसका नाम और चेहरा-मोहरा उन्हें आज भी याद है) की सलाह पर उन्होंने पंडित राधारमण त्रिपाठी का दरवाजा खटखटाया था।

सोमवार को सफेद और गुरुवार को पीताभ वस्त्र, तर्जनी में पुखराज और अनामिका में नीलम, सात शनिवार सरसों के तेल का दान और रोज सुबह उठते समय सीधे पैर का पहले उपयोग करने जैसे छुटपुट मासूम 'उपायों' की नाकामयाबी के बाद, बहुत सोच-विचार करके उन्होंने 'अति श्यामवर्ण का श्वान' घर में पालने की सिफारिश की थी। श्याम वर्ण मतलब उसका एक भी बाल इस रंग के सिवाय नहीं होना चाहिए।

रुस्तम उसी उपक्रम का नतीजा था (उसे हासिल करने की दौड़-भाग में क्या जाना)। और उनका दिल गवाह है कि रुस्तम कितना अचूक और कारगर सिद्ध हुआ।

छह महीने के अंदर-अंदर पहले उन्हें छोटी मगर बाद में कद (यानी वरिष्ठता) मुताबिक डिस्ट्रिक मिलती गई। इलेक्शन वाले साल को जाने दें तो तब से ही उनका 'फील्ड' चल रहा था। यानी पाँच साल तो हो ही गए। संत-महात्मा नहीं था तो क्या था जो इतने दिनों उन्हें उपकृत करके यूँ ही चला गया... रुस्तम...' का भोर तक रोसनी किए परे रहेंगे... चलिए बंद कीजिए... भोर में उ का किरिया-करम भी तो देखे परेगा।'

रुस्तम के सहारे अपने निकट अतीत पर नजर फिराते अमर प्रताप की सोच को कमलादेवी ने बिस्तर पर एक ऊँघी हुई पलटी से 'कट' कर दिया।

सुबह चढ़ते तक बँगला खासी हरकत में आ गया है। कलफ लगे सफेद कुर्ता-पायजामे पहने कई जाने-पहचाने चेहरे हैं। पंडित राधारमण अंतिम संस्कार के लिए काम आनेवाली चीजें - अबीर, धूप, गुलाबजल, शहद, सुपारी, गुड़, काला तिल, जौ, समिधा, गुलाल और गंगाजल-लिखवा रहे हैं। प्रतीक ट्रैवल से आया टैंपो कब से पोर्च में लगा खड़ा है। परबत चला ले जाएगा। थोड़ी बहस इस पर हो चुकी है कि रुस्तम का दाह संस्कार किया जाए या दफनाया जाए। आम राय, जिसमें परसा की विनती शामिल रही है, दफनाने की तरफ बनी है। कुदाल-तसला-फावड़ा टैंपो में रखे जा चुके हैं।

भीतर ड्राइंग-रूम में डी.एम. अमर प्रताप सिंह एक सहमे से बैठे समूह को समझा रहे हैं... बड़ी धैर्यवान नस्ल होती है इनकी... समझदार और निष्ठावान... अपने को घर का सदस्य मानकर चलते हैं और लगे कि वैसा नहीं हो रहा है तो हिंसक हो उठते हैं। आप लोगों ने गौर किया हो कि घर पर रखी मीटिंग्स में अक्सर हमारे पैरों के पास आकर बैठ जाता था। दे आर वेरी गुड स्टुडेंट्स... सीखी चीजों पर अमल करते हैं। दरअसल लेब्राडोर कनाडा का एक तटीय कस्बा है जहाँ से इनकी नस्ल की शुरुआत हुई... वहीं से वे अमरीका और इंग्लैंड गए। नशीली चीजों की शिनाख्त करने में इन्हें महारत होती है... वी वर रियली लकी टू ओन सच ए सोल...।

पंडितजी की अड़िम-गड़िम के बीच परसाराम राजा भैया को नहला रहा है, लेप कर रहा है, गुलाबजल छिड़क रहा है।

दफन कहाँ किया जाएगा?

अरे, वो तिवोली की पहाड़ी है ना... कितना बड़ा और सुंदर गार्डन है उसका... वहीं।

वहाँ एलाउड है?

नहीं है तो हो जाएगा!

मंत्रोच्चार के बीच पंडितजी ने जैसे ही आदेश दिया, 'इनके पार्थिव को कंधा दीजिए' तो तीन-चार स्वयंसेवकों ने कफन से लिपटी और फूलों से लदी, ऐंठ खा चुकी लाश को हाथोंहाथ लेकर टैंपो पर रख दिया। रेंगते-पसरे विधि-विधानों की बदहवासी के बीच से निकलकर तभी परसा पोटली बने राजा भैया के बाजू में जा पहुँचा और आभार मिश्रित अलविदा में हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। मौजूद तमाम लोगों ने पोर्च से मुख्यद्वार की तरफ सरकते टैंपो का साथ देने में कदम मिलाए। कुछ लोगों ने चार कदम मुख्य सड़क पर भी साथ बढ़ाए मगर जब टैंपो ने रफ्तार पकड़ ली तो सब अपने-अपने ठीयों की तरफ लौट आए।

तिवोली की पहाड़ी का वह मैदान सुनसान था। दूर एक कोने से दूसरे कस्बे की इमारतें दिख रही थीं। बीच में ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियाँ और तलहटी में पड़ी मौसमी नदी थी। वहाँ खड़े होकर आती बयार में एक अजब रफ्तार और ताजगी महसूस होती थी।

वहाँ पहुँचकर जैसे ही परबत शव को नीचे रखने लगा तो अजीब तरह से अकबकाकर परसाराम चिल्लाया, '...अररे ...इहाँ नहिं, कुतरवा को ऊहाँ ले चल।' परसा इशारा तो जरूर कर रहा था मगर यह परबत के लिए पहेली थी।

'ऊहें सब तो पत्थरवा है... ऊहाँ गड्ढा कइसे करिहें।'

शंका समाधान में, नजदीक आकर परसा ने परबत के एक रहपटा जमाते हुए झिंझोड़ा, '...ससुर, तुहार बाप क फूँकन का जमीन नाहीं और हइाँ कुतरवा को गड्ढा खोदेंगे... फेंक दे ससुर को ऊहाँ खाई में... और बोले देते हैं...'

आगे परसा के बोलने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

कमला देवी के सिर में तेल मालिश करते हुए परसी बतलाए जा रही थी '...इ तो कल से एक कौर नहिं खाए हैं... हरदम राजा भैया की ही बात करत रहिं... एतना परसान तो इन्हें हम कभी देखबे ही नहिं किए... घर की रौनक त देखिये कइसन चली गई...'

परसी घुले जा रही थी, घुले जा रही थी।

X